

विषय:हिंदी, स्नातक(प्रतिष्ठा),द्वितीय वर्ष

### छायावाद की पृष्ठभूमि

हिंदी में छायावाद शायद भक्ति साहित्य के बाद सृजनात्मकता की दृष्टि से सर्वाधिक उर्वर साहित्यिक काल रहा है। नामवर सिंह ने अपनी किताब *आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ* के 'छायावाद' शीर्षक अध्याय में इस काल की सीमा तय करते हुए सुमित्रानंदन पंत के दो काव्य-संग्रहों के प्रकाशन वर्ष का उल्लेख किया है। उनके अनुसार 'छायावाद विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के "रोमांटिक" उत्थान की वह काव्यधारा है जो लगभग ईसवी सन 1918 से 1936 ('उच्छ्वास' से 'युगान्त') तक की प्रमुख युगवाणी रही---।' उन्होंने इस साहित्यिक आंदोलन के प्रमुख कवियों के रूप में 'प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी प्रभृति मुख्य कवि' का नाम गिनाया है। लेकिन उस कालखंड में केवल कवि ही नहीं थे। कहा जा सकता है कि न केवल उपर्युक्त प्रसिद्ध कवियों की मौजूदगी के चलते, बल्कि उनके साथ प्रेमचंद जैसे उपन्यासकार और रामचंद्र शुक्ल जैसे आलोचक और साहित्येतिहासकार ने इस समय को रचनात्मक गहमागहमी से भर दिया था। आधुनिक हिंदी के साहित्यांदोलनों में छायावाद सतही तौर पर अपने समय की राजनीतिक-सामाजिक हलचलों से सबसे दूर महसूस होता है लेकिन इसने तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक हलचलों को सबसे तीक्ष्ण और गहन अभिव्यक्ति दी। यहां तक कि छायावाद के विरोधी के रूप में विख्यात आलोचक रामचंद्र शुक्ल ने भी इसकी राजनीतिक पृष्ठभूमि की विशिष्टता व्याख्या करते हुए इस बात को रेखांकित किया कि 'तृतीय उत्थान में आकर परिस्थिति बहुत बदल गई, आंदोलनों ने सक्रिय रूप धारण किया और गांव-गांव राजनीतिक और आर्थिक परतंत्रता के विरोध की भावना जगाई गई।' उनका यह भी कहना था कि 'अब जो आंदोलन चले वे सामान्य जन समुदायों को भी साथ लेकर चले। सबसे बड़ी बात यह हुई कि आंदोलन संसार के और भागों में चलने वाले आंदोलनों के मेल में लाए गए, जिससे ये क्षोभ की एक सार्वभौम धारा की शाखाओं से प्रतीत हुए।' परोक्ष रूप से वे उपनिवेशवाद विरोधी (साम्राज्यवाद विरोधी) अंतर्राष्ट्रीय गोलबंदी का प्रतिनिधित्व और उसकी अभिव्यक्ति छायावाद में देख रहे थे। अगर ठीक ठीक कहना हो तो असहयोग आंदोलन के आरंभ से लेकर प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना तक का कालखंड छायावाद का समय माना जा सकता है।

असहयोग आंदोलन अपनी लाख कमजोरियों के बावजूद जनता की स्वाधीनता आंदोलन में भागीदारी के लिहाज से तब तक की सबसे बड़ी जन गोलबंदी थी। साथ में ही चले खिलाफत आंदोलन ने इसकी व्यापकता को नये आयाम दिए। खिलाफत आंदोलन तुर्की की खलीफ़ा की गद्दी को अंग्रेजों द्वारा खत्म करने के विरोध में शुरू किया गया था और इसमें भारत के मुसलमान बड़े पैमाने पर शरीक हुए थे। 1857 के

विद्रोह के बाद पहली बार हिंदू और मुसलमान एक साथ इस दौरान अंग्रेजों के शासन के विरुद्ध लड़े। इस व्यापक जन भागीदारी ने साहित्य लिखने वालों पर गहरा रचनात्मक प्रभाव डाला। छायावादी कविता में देशभक्ति की अभिव्यक्ति पर ठीक से विचार नहीं हुआ है लेकिन अनायास नहीं कि जयशंकर प्रसाद ने ‘हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती/ स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती/ अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो/ प्रशस्त पुण्य पंथ है बढ़े चलो बढ़े चलो।’ जैसा प्रयाण गीत लिखा। निराला ने भी थोड़ा आध्यात्मिक रंग लिए हुए ‘जागो फिर एक बार’ जैसी कविताओं या ‘वर दे वीणावादिनि वर दे’ जैसे गीतों में ‘प्रिय स्वतंत्र रव, अमृत मंत्र नव/ भारत में भर दे’ कहकर देश की बात की। महादेवी के ‘पंथ रहने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला’ जैसे गीत में ओज और उत्साह का स्रोत स्वाधीनता आंदोलन ही है। इन सभी लेखकों में गद्य की मात्रा और गुण काव्य से हीनतर नहीं रहा है और कुछ अपवादों को छोड़कर इन लेखकों का गद्य अपने समय की व्यापक सामाजिक राजनीतिक हलचलों से प्रभावित रहा है। इन घोषित कवियों के अलावा प्रेमचंद के लेखन में सामाजिक और राजनीतिक मुक्ति का समर्थन अर्थात् सामंतवाद और साम्राज्यवाद के समेकित विरोध का तथ्य हिंदी के सामान्य पाठक के लिए भी अनजाना नहीं है। आचार्य शुक्ल के सिलसिले में भी इस बात के पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं कि उनका लेखन और चिंतन अपने समय के सामाजिक राजनीतिक वातावरण से प्रभावित रहा था। *हिंदी साहित्य का इतिहास* में आधुनिक काल के साहित्य का विवेचन करते हुए उसकी पृष्ठभूमि के रूप में उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन का जिक्र तो किया ही है, निबंधों में भी यथावसर देशप्रेम का महत्व उजागर किया है। ‘असहयोग आंदोलन और अव्यापारिक श्रेणियां’ शीर्षक से लिखा उनका एक लेख भी उनकी सचेतनता का सबूत है। वस्तुतः ऊपर वर्णित चार कवियों को ही छायावाद के भीतर शामिल करने से इनकी कविताओं की भी अनेक विशेषताओं को समझना मुश्किल हो जाता है।

इस साहित्यिक आंदोलन का नामकरण भी विचारणीय है। ध्यातव्य है कि किसी भी छायावादी साहित्यकार ने अपने आपको छायावादी नहीं कहा। यह नाम, बल्कि बदनाम, उसके विरोधियों का दिया हुआ है। कहा गया कि हिंदी में यह बांग्ला कविता का प्रभाव है यानी बांग्ला की हिंदी में छाया इस काव्यांदोलन के जरिए प्रकट हो रही है। उसका दूसरा अर्थ यह कहकर निकाला गया कि जिस तरह छाया में कुछ भी ठोस नहीं होता उसी तरह इनकी कविताओं में भी कोई ठोस अर्थ नहीं है। जिस तरह छाया पकड़ में नहीं आती उसी तरह इनका अर्थ भी उड़ता फिरता है। जयशंकर प्रसाद ने इन नकारात्मक अर्थों को उलटकर छाया का एक और ही अर्थ करते हुए इस शब्द को इन कविताओं की खूबी का द्योतक बना दिया। उन्होंने कहा कि मोती की तरलता को उसकी छाया कहा जाता है। इसी तरह जब कविता में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ में एक तरल कांति उत्पन्न हो जाती है यानी जब कविता में प्रयुक्त शब्दों में उनके सामान्य अर्थ के अतिरिक्त अर्थ पैदा होने लगते हैं तो ऐसी कविता को छायावादी कविता कहना चाहिए।

‘आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां’ में नामवर सिंह ने बताया है कि ‘छायावाद’ संज्ञा का प्रचलन 1920 ईसवी तक हो चुका था। इसका प्रमाण जबलपुर की पत्रिका ‘श्री शारदा’ में मुकुटधर पांडेय की लेखमाला ‘हिंदी में छायावाद’ के प्रकाशन से मिलता है। इस लेखमाला के एक लेख ‘काव्य स्वातंत्र्य’ में उन्होंने लिखा ‘यह बीसवीं शताब्दी स्वतंत्रता और नवीनता का युग है। नए-नए विचारों ने आज पृथ्वी पर एक बड़ा भारी परिवर्तन खड़ा कर दिया है।-----विज्ञान के इस नए युग में लोग देश-जाति के प्राण स्वरूप साहित्य से उदासीन रहें- भला यह कैसे संभव है।’ इसी बदलाव के भीतर छायावाद को भी अवस्थित करते हुए उन्होंने लिखा ‘साहित्य में इस समय जो-जो क्रांतियां हो रही हैं उनमें छायावाद भी एक है।’

यह बदलाव सबको नहीं भा रहा था। ज्योति प्रसाद मिश्र निर्मल ने जून 1924 की *मनोरमा* में ‘हिंदी कविता की गति’ शीर्षक लेख में लिखा ‘जिन दिशाओं से यह नूतन लालिमा दृष्टिगोचर हो रही है, वह बंगला और अंग्रेजी है, और यदि हम इतना कहने का साहस करने के लिए क्षमा किए जाएं तो यह स्पष्ट निवेदन करेंगे कि हमारे अधिकांश परिवर्तनवादी कवि बंगला के उत्कृष्ट कवियों की प्रतिभा से प्रतिभायुक्त, तपस्या से तपस्वी और साधना से साधक बन रहे हैं।’ निर्मल जी ने निराला की कविता का उदाहरण दिया था इसलिए यह बहस बहुत तीखे ढंग से चली कि निराला ने रवींद्रनाथ ठाकुर की कविता की नकल की है। निराला की कविता के ही प्रसंग में छंद संबंधी बहस भी चली। ‘मतवाला’ में 1924 में ही नवजादिक लाल श्रीवास्तव ने इस प्रसंग में निराला की ओर से लिखा ‘जब कविता धाराप्रवाह निकलने लगती है उस समय कवि का ध्यान तुक की ओर नहीं रहता, वह भावों का ही अनुसरण करता है। तुकबंदी कविता की नक्काशी है, वह मुक्त काव्य नहीं। मुक्त काव्य ही कविता का सच्चा स्वरूप है।’ खुद निराला ने 1925 के कवि में प्रकाशित ‘कवि और कविता’ शीर्षक लेख में इस सिलसिले में लिखा ‘जिस तरह मुक्त पुरुष संसार के किसी नियम के वशीभूत नहीं रहते, किंतु उन नियमों की सीमा पार कर सदा मुक्ति के आनंद में विहार करते रहते हैं, उसी तरह मुक्त कवि भी अपनी कविता को पिंगल के बंधन में नहीं रखना चाहते।’ छंद की इस बहस ने आज की मुक्त छंद की हिंदी कविता के लिए राह बनाई क्योंकि निराला तथा अन्य छायावाद समर्थकों ने मुक्त छंद की धारणा को इस बहस के सहारे हिंदी में स्थापित कर दिया।

यह तो छायावाद का आरंभ था। 1926 में सुमित्रानंदन पंत के काव्य संग्रह ‘पल्लव’ के प्रकाशन के बाद उसकी कविताओं तथा उसकी भूमिका के चलते छायावाद हिंदी में स्थापित हो गया। इसकी भूमिका में पंत जी ने कविता के लिए ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली के सवाल पर जो बात रखी उसमें यह सवाल मात्र भाषा का नहीं, बल्कि समूचे भावबोध का हो जाता है। ब्रजभाषा में लिखी रीतिकालीन कविता की समस्या थी कि ‘इस तीन फुट के नखशिख के संसार से बाहर ये कवि पुंगव नहीं जा सके। हास्य, अद्भुत, भयानक आदि रसों के तो लेखनी को- नायिका के अंगों को चाटते-चाटते, रूप की मिठास से बंध रहे मुंह को खोलने, खखारने के लिए कभी-कभी कुल्ले मात्र करा दिए गए हैं। और वीर तथा रौद्र रस की कविता

लिखने के समय तो ब्रजभाषा की लेखनी भय के मारे जैसे हकलाने लगती है।' जबकि समय की मांग ऐसी काव्यभाषा है 'जिसके शब्दों में बात-उत्पात, वह्नि-बाढ़, उल्का-भूकंप सब कुछ समा सके, बांधा जा सके, जिसके पृष्ठों पर मानव जाति की सभ्यता का उत्थान-पतन, वृद्धि-विनाश, आवर्तन-विवर्तन, नूतन-पुरातन सब कुछ चित्रित हो सके, जिसकी अलमारियों में दर्शन, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, राजनीति, समाजनीति, कला-कौशल, कथा-कहानी, काव्य-नाटक सब कुछ सजाया जा सके।' पंत जी का कहना था कि ऐसी भाषा खड़ी बोली ही हो सकती है। हिंदी साहित्य में कविता और गद्य की भाषा में अंतर आधुनिक काल की शुरुआत से ही महसूस किया जा रहा था। भारतेन्दु जी ने गद्य के लिए तो खड़ी बोली का इस्तेमाल किया लेकिन कविताओं के लिए ज्यादातर ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया। द्विवेदी युग से थोड़ा खड़ी बोली में कविता लिखने की कोशिश शुरू हुई लेकिन मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के लेखन में स्वाभाविक काव्य प्रवाह खड़ी बोली में नहीं आ सका था। छायावाद की कविता ने व्यावहारिक धरातल पर भी खड़ी बोली में प्रवाहयुक्त रसमय कविता का मानक स्थापित कर दिया।

श्री शारदा में प्रकाशित उपर्युक्त लेखमाला के एक और लेख 'छायावाद क्या है' में मुकुटधर पांडेय ने छायावाद के लिए प्रयुक्त धारणा रहस्यवाद की भी नींव रख दी थी। उन्होंने लिखा था 'अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बंग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखने वाले तो सुनते ही समझ जाएंगे कि यह शब्द मिस्टिसिज्म के लिए आया है।' नामवर सिंह ने *आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां* में शामिल 'छायावाद' शीर्षक उक्त लेख में कहा है कि 'पंत के 'पल्लव' और प्रसाद के 'झरना' आदि संग्रहों की कविताओं को 1927 ईसवी तक अंग्रेजी में 'मिस्टिसिज्म' और हिंदी में कभी 'छायावाद' और कभी 'रहस्यवाद' कहा जाता था। छायावाद और रहस्यवाद को समानार्थी समझने के कारण ही महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 1927 की 'सरस्वती' में 'सुकवि किंकर' के छद्म नाम से लिखे लेख 'आजकल के हिंदी कवि और कविता' में लिखा 'आजकल जो लोग रहस्यमयी या छायामूलक कविता लिखते हैं उनकी कविता से तो उन लोगों की पद्य रचना अच्छी होती है जो देशप्रेम पर अपनी लेखनी चलाते---हैं।' द्विवेदी जी ने छायावाद के समर्थकों को अपने इस लेख से उत्तेजित कर दिया था। जिन लोगों ने छायावाद के समर्थन में लिखा उनमें कृष्णदेव प्रसाद गौड़ और अवध उपाध्याय ने छायावादी कविता को रहस्यवादी मानकर उसका पक्ष लिया। इसी कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 1929 में एक गंभीर लेख लिखा 'काव्य में रहस्यवाद'।

नामवर सिंह का कहना है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा किए गए विवेचन में 'तात्त्विक दृष्टि से उन रचनाओं को "रहस्यवाद" कहा जाता था और रूप-विधान की दृष्टि से "छायावाद"।' कहने का मतलब कि शुक्ल जी इन कविताओं की अंतर्वस्तु को रहस्यवाद कहते थे और रूप को छायावाद। शुक्ल जी के इस लेख के बाद छायावाद के दो ऐसे समर्थक सामने आए जिन्होंने सहानुभूति के साथ छायावाद का विवेचन-

विश्लेषण किया। ये थे नंद दुलारे वाजपेयी और शांतिप्रिय द्विवेदी। नंद दुलारे वाजपेयी ने भी छायावाद और रहस्यवाद को अलग अलग नहीं माना, बल्कि रहस्यवाद के भीतर ही स्वच्छदतावादी कवियों की भी गिनती कर ली।

1929 के आते आते दिखाई पड़ने लगा कि छायावाद में आगे विकास नहीं हो पा रहा है। 'विशाल भारत' के दिसंबर 1929 में श्री ठाकुर प्रसाद शर्मा का लेख 'छायावाद' छपा। इसमें उन्होंने छायावाद के भीतर पैदा हो रहे रीतिवाद की चर्चा की और कहा 'जैसे ब्रजभाषा की कविता को लट, नीवी, श्रमविंदु इत्यादि से उद्धार करने की आवश्यकता है, वैसे ही मैं समझता हूँ कि छायावादी कविता को विपंची, हत्ततंत्री, झंझावात आदि से छुटकारा दिलाने की जरूरत है।' इसी लेख में उन्होंने एक और आरोप लगाया जो छायावादी कविता के सामाजिक आधार पर अत्यंत विचारणीय टिप्पणी थी। उनके मुताबिक 'वर्तमान कविता का जीवन इस्तमरारी बंदोबस्त में मौज करने वाले पढ़े-लिखे जमींदार का जीवन है।' छायावादी कविता की सीमाओं के बारे में उस समय के आलोचक तो सतर्क थे ही, खुद छायावादी लेखकों ने भी इन सीमाओं को समझकर अपने लेखन में नवीन मार्ग अपनाना शुरू किया। निराला ने कविता में 'नए पत्ते' संग्रह में नई जमीन तोड़ी। उन्होंने गद्य में भी इस बदलाव को स्वर दिया और 'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' जैसे यथार्थवादी उपन्यास लिखे। जयशंकर प्रसाद का उपन्यास 'कंकाल' भी इसी नए चेतना का परिचायक था। महादेवी ने कविताओं/गीतों की जगह गद्य लिखने में ताकत लगाई। सुमित्रानंदन पंत कविता लिखते तो रहे लेकिन कोई नवीनता नहीं प्रकट हो पा रही थी। सामाजिक राजनीतिक हालात में बदलाव तथा वैचारिक वातावरण में परिवर्तन के चलते छायावाद का अतिक्रमण करके हिंदी साहित्य में कुछ नई साहित्यिक प्रवृत्तियों का आगमन हुआ जिनकी चरम परिणति प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना और प्रगतिवाद की स्थापना में हुई।

अलबत्ता शांतिप्रिय द्विवेदी ने 1934 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'हमारे साहित्य निर्माता' में छायावाद को 'लौकिक अभिव्यक्ति' माना और रहस्यवाद को 'अलौकिक'। इस तरह उन्होंने इन दोनों के बीच अंतर माना और कहा 'जिस प्रकार 'मैटर आफ़ फ़ैक्ट' के आगे की चीज छायावाद है, उसी प्रकार छायावाद के आगे की चीज रहस्यवाद है। छायावाद में यदि एक जीवन के साथ दूसरे जीवन की अभिव्यक्ति है अथवा आत्मा के साथ आत्मा का सन्निवेश है, तो रहस्यवाद में आत्मा का परमात्मा के साथ।' शांतिप्रिय द्विवेदी ने रहस्यवाद को न केवल छायावाद से भिन्न माना बल्कि रहस्यवाद का समर्थन भी नहीं किया।

वैसे तो आम तौर पर लेखकों में तुलना और किसी को ऊंचा या नीचा कहना ठीक नहीं होता लेकिन यह समय वास्तव में ऐसा था जब एकाधिक लेखक समान ढंग से महत्वपूर्ण थे और उन सबका स्वतंत्र व्यक्तित्व था। जितने प्रमाण हैं उससे लगता है कि इनमें आपसी ईर्ष्या द्वेष भी अपेक्षाकृत कम था।

इनमें सबसे अधिक गहराई जयशंकर प्रसाद में थी। काव्य लेखन की शुरुआत ब्रजभाषा से करने के बावजूद 'कामायनी' के रूप में उन्होंने सबसे लंबी काव्य-यात्रा तय की। बीच में उनका खंड-काव्य 'आंसू' है जिसकी प्रसिद्धि गेयता के चलते उस दौर में बहुत थी। इसमें प्रेम की असफलता से पैदा उदासी ऐसी चित्रात्मक भाषा में व्यक्त की गई थी कि युवकों को बेहद आकर्षित करती थी। ऐसे बांध लेने वाले टुकड़े 'कामायनी' में भी हैं लेकिन उसका सौंदर्य आधुनिक जीवन की विडंबना- 'ज्ञान-क्रिया-इच्छा' के बीच के संबंध-विच्छेद- को उठाने में निहित है। अकेले इसी महाकाव्य का विश्लेषण अनेक आलोचनात्मक और व्याख्यात्मक पुस्तकों में किया गया है। इस महाकाव्य के अलग-अलग सर्ग स्वतंत्र रूप से सम्मोहित करने में सक्षम हैं। श्रद्धा का उद्बोधन 'शक्ति के विद्युतकण जो व्यस्त/विकल बिखरे हैं हो निरुपाय/ समन्वय उनका करे समस्त/विजयिनी मानवता हो जाय' नवजागरण का घोष प्रतीत होता है। किसी मनोभाव को पात्र बनाकर उसकी मूर्ति खड़ी कर देने के मामले में 'कामायनी' का लज्जा सर्ग अप्रतिम है। काव्य-व्याख्या के लिए जयशंकर 'प्रसाद' न केवल चुनौतीपूर्ण हैं, बल्कि मन लगाने वाले भी। उनकी बिंबात्मक भाषा ठहरकर अर्थ खोलने की मांग करती है। नाटक के क्षेत्र में उन्होंने नाटक तो लिखे ही उन पर सैद्धांतिक विचार भी किया। इनके नाटक ऊपर से प्राचीन भारत के शासकों की प्रशंसा प्रतीत होते हैं लेकिन उनके भीतर प्रवेश करते ही हमें दरबारों की गलाजत का चित्रण मिलने लगता है। अंतिम नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' में तो तलाक लेने का अधिकार स्त्री को दिया गया है। उनके नाटकों और कहानियों में मनुष्य के भाग्य के उत्थान पतन को इतने ज्यादा समाजैतिहासिक तत्वों के साथ गूँथ दिया गया है कि प्रसाद जी दार्शनिक के रूप में नजर आने लगते हैं। उन्होंने हेगेल को उद्धृत किया है जिससे लगता है कि उन्होंने इतिहास संबंधी हेगेल की मान्यताओं को अच्छी तरह समझा था। इतिहास की यह परिष्कृत समझ उनकी अनेक कहानियों में भी दिखाई पड़ती है। आचार्य शुक्ल ने साम्यवाद से उनके परिचय की ओर भी इशारा किया है। प्रसाद जी की कहानियों की विशेषता के कारण ही बहुत कम कहानियों के बावजूद हिंदी कहानी के 'प्रसाद स्कूल' की बात की जाती है। उनकी कहानियों में नाटकीयता का तत्व पाठक का ध्यान खींचता है। इस नाटकीयता के सृजन के लिए वे मनोभावों के टकराव का चित्रण करते हैं। खासकर 'आकाशदीप' में प्रेम और स्वाधीनता के टकराव को जितनी तीक्ष्णता से उन्होंने उठाया है वह उनकी आधुनिक दृष्टि का परिचायक है। 'ममता' में वे इस्लाम के सवाल पर अपने समय से बहुत आगे नजर आते हैं। पात्रों के मामले में धर्म की जगह उनकी राष्ट्रीयता को उद्धृत करना उन्हें बेहद विशिष्ट बना देता है। व्यवस्थित आलोचक न होने के बावजूद उनमें आलोचकीय सूझ बहुत थी। प्रगतिवाद को 'लघुता की ओर दृष्टिपात' कहकर उन्होंने इसकी संक्षिप्ततम परिभाषा की। नाटक और रंगमंच के रिश्ते को उन्होंने यह कहकर सूत्रबद्ध किया कि 'रंगमंच नाटक के लिए होता है'। रसाभास के प्रसंग में उन्होंने शुक्लजी से टक्कर ली। भारतीय काव्यशास्त्र के बारे में भी उन्होंने मौलिक स्थापनाएं प्रस्तुत कीं और 'रस' तथा 'अलंकार' को ही मूल धारा मानते हुए अन्य संप्रदायों को इन्हीं के मिश्रण से उत्पन्न बताया। कविता को 'आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति' कहना अब

भी व्याख्या की दरकार रखता है। संकल्पात्मक में संकल्प की जगह कल्पना का अर्थ लेने से इस सूक्ति का अर्थ खुलता है।

जयशंकर प्रसाद के बारे में यह धारणा सही है कि वे दार्शनिक कवि थे। मुक्तिबोध ने यह बात कही है। खासकर 'कामायनी' में वे आधुनिक सभ्यता की मौलिक समस्या को उठाते हैं। अनेक स्थानों पर उनकी कविता सतही पाठ करने पर तुलसीदास की कविता की तरह धोखा दे देती है। उदाहरण के लिए 'आंसू से भीगे अंचल पर मन का सब कुछ रखना होगा/ तुमको अपनी स्मिति रेखा से यह संधि पत्र लिखना होगा' में लग सकता है कि वे इसकी तार्किक कर रहे हैं लेकिन थोड़ा ध्यान देते ही आंख में आंसू और चेहरे पर मुस्कान की मजबूरी की विडंबना सामने आ जाती है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने काम के प्रेम और रति के लज्जा में रूपांतरण को मनुष्य की सांस्कृतिक परिष्कृति के रूप में परिभाषित किया है। देव संस्कृति के नाश को सामंती अतीत के विनाश के रूप में देखना भी गलत नहीं है। आचार्य शुक्ल ने संकेत किया है कि प्रसाद जी साम्यवादी विचारों से प्रभावित थे।

स्वाभाविक रूप से प्रसाद के बाद निराला पर ध्यान जाता है। रामविलास शर्मा की लिखी तीन खंडों में प्रकाशित 'निराला की साहित्य साधना' इनके जीवन और साहित्य की समझ के लिए सर्वोत्तम पुस्तक है। निराला के प्रत्येक काव्य संग्रह में काव्य-बोध के बदलाव तथा काव्य-कला की नई ऊंचाई पर अनेक आलोचकों ने टिप्पणी की है। नागार्जुन के पहले निराला ही थे जिन्होंने कविता के सीमांत छुए और वहां भी कविता को संभव किया। कविताओं के मामले में उनकी कीर्ति का आधार उनकी लंबी कविताएं हैं। 'राम की शक्तिपूजा' शीर्षक कविता में उन्होंने माइकेल मधुसूदन दत्त की 'मेघनाथ वध' की तरह संस्कृतनिष्ठ पदावली की झड़ी लगा दी। 'सरोज स्मृति' शीर्षक कविता उन्होंने अपनी पुत्री के देहांत पर शोकगीत के ढांचे में लिखी। इस कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कवि पिता ने अपनी पुत्री का सौंदर्य वर्णन किया है। यह वर्णन कविता की दुनिया में दुर्लभ है। निजी व्यथा को निराला ने सामाजिक और साहित्यिक संघर्ष के साथ गूँथ दिया है। 'तुलसीदास' शीर्षक कविता भक्तिकाल के इस महान कवि के सांस्कृतिक उन्मेष की रचनात्मक व्याख्या है। 'कुकुरमुत्ता' शीर्षक कविता अभिजात सौंदर्याभिरुचि पर प्रहार है। गीतों की रचना में भी उन्हें बहुत सफलता मिली। इनकी विषयवस्तु भक्ति से लेकर करुणा तक विस्तृत है। उन्होंने कविता से पहले गद्य लिखना शुरू किया था। बाद के उपन्यासों में यथार्थवाद की मौजूदगी को अनेक लोगों ने पहचाना है लेकिन शुरुआती उपन्यासों में भी गहराई है जिसका विश्लेषण अभी नहीं किया गया है। पात्रों के मामले में नौजवानों और स्त्रियों की उपस्थिति उन्हें इस पहलू से भी प्रेमचंद से जोड़ती है। आलोचना भी उन्हें काफी लिखनी पड़ी थी। उनकी कहानियां नये किस्म के कहानी लेखन की संभावना का संकेत करती हैं। निबंधों में गद्य की सृजनात्मकता को पहचानने की जरूरत रामविलास जी ने लक्षित की ही है। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही उनकी प्रतिभा को 'बहुवस्तुस्पर्शिनी' कहा था। नागार्जुन ने स्त्री समुदाय के

प्रति उनकी सहानुभूति को ठीक ही लक्षित किया है जो कविताओं के अतिरिक्त 'देवी' जैसी कहानी में बहुत स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है ।

महादेवी वर्मा ने कवयित्री के रूप में जो प्रसिद्धि अर्जित की उसके कारण उनका क्रांतिकारी रूप छिप जाता है । महादेवी ने गीतों के लेखन में अपनी काव्य प्रतिभा लगाई । उनके गीतों में दुख की अभिव्यक्ति के बराबर ही उद्बोधन के भाव भी हैं । गद्य लेखन में उनके रेखाचित्रों और संस्मरणों में स्त्रियों-ग्रामीणों और साथी साहित्यकारों के बहुत ही जीवंत चित्र अंकित हुए हैं । इनके अतिरिक्त उनका वैचारिक लेखन भावावेग और सूझबूझ से भरा हुआ है । उनकी किताब 'शृंखला की कड़ियां' भारतीय स्त्री पर आरोपित व्यवस्थित सामाजिक बंधनों का विश्लेषण है । उस समय हिन्दी के पौरुषेय वातावरण में किसी भी स्त्री के लिए अपनी जगह बनाना लगभग असंभव काम था जो महादेवी ने कर दिखाया ।

सुमित्रानंदन पंत की कविताओं ने प्रकृति चित्रण के नाते हिंदी साहित्य में खास जगह बनाई । हिमालय की छवियों के सहारे उन्होंने चित्ताकर्षक प्राकृतिक बिंब उकेरे । इसी कारण उन्हें लोकप्रिय भाषा में 'प्रकृति का सुकुमार कवि' कहा जाता है । प्रकृति चित्रण के अतिरिक्त उन्होंने वैचारिक कविता भी लिखने की कोशिश की । उनकी इन कविताओं में वैचारिकता की गहराई नहीं है और गांधीवाद, मार्क्सवाद से लेकर अरविंद दर्शन तक को उन्होंने काव्य का विषय बनाया । हिंदी में उत्तर छायावादी दौर में प्रचलित हालावाद का भी उन्होंने अनुकरण करने की कोशिश की ।

इन कवियों के बाहर छायावाद का प्रसार प्रेमचंद के लेखन में भी है । उनके स्त्री पात्रों के गढ़ने में छायावादी संस्कार प्रत्यक्ष हैं । हिंदी कहानी की दुनिया में प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद को विरोधी प्रवृत्तियों का लेखक माना जाता है और इसी आधार पर इन दोनों के नाम पर दो स्कूलों की कल्पना की जाती है । लेकिन खुद प्रेमचंद इस विरोध को तात्त्विक नहीं मानते थे । उनका मानना था कि वे दोनों आदर्श समाज की इच्छा से यथार्थ का चित्रण करते हैं । स्वाधीनता आंदोलन की दोनों धाराओं- समाज सुधार और राजनीतिक आजादी- का सामंजस्य प्रेमचंद के लेखन में मिलता है ।

रामचंद्र शुक्ल के बारे में यह अपवाद ही है कि वे छायावाद के विरोधी थे । छंद को ध्वनि आवर्तों का पैटर्न मानने में छायावादी काव्य संस्कारों की गूंज है । इसके अतिरिक्त 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में रीतिकालीन कवियों में बिहारी के मुकाबले देव की कविता का पक्ष लेने तथा रीतिमुक्त काव्यधारा में घनानंद की प्रतिष्ठा के पीछे छायावादी काव्य संस्कारों का प्रभाव महसूस किया जा सकता है । कविता की भाषा में लाक्षणिकता का उल्लेख शुक्ल जी ने घनानंद और छायावादी कवियों के ही प्रसंग में किया है । छायावादी कविता की शक्तियों और सीमाओं की सबसे सटीक पहचान आचार्य शुक्ल को थी ।



छायावाद की कोई ऐसी मान्यता निर्मित करना मुश्किल है जिसके भीतर इन सभी रचनाकारों के लेखन की विशेषताएं समा जाएं। फिर भी स्वाधीनता की आकांक्षा, प्रकृति वर्णन, वैयक्तिकता का उभार, मुक्त छंद की स्थापना, मनोभावों का सूक्ष्म चित्रण, स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व की प्रस्तुति, समाज के वंचितों के प्रति सहानुभूति, कल्पना की उड़ान और कविता की भाषा के बतौर खड़ी बोली हिंदी की स्थापना आदि छायावाद की प्रमुख विशेषताएं और योगदान कहे जा सकते हैं। वह समय भारत की आजादी की लड़ाई में व्यापक जनता की भागीदारी का समय था। साथ ही हिंदी क्षेत्र में शहरी मध्यवर्ग का विकास हो रहा था। इस नवोदित मध्यवर्ग का रिश्ता अभी देहाती जड़ों से टूटा नहीं था। अधिकांश लेखक इस मध्यवर्ग का अंग थे। सामाजिक बदलाव की इस मध्यवर्ग की आकांक्षा और हिंदी भाषी समाज के सामंती यथार्थ के बीच की टकराहट छायावाद की शक्ति और सीमा दोनों को रूपायित करती है। इसी के कारण मुक्ति की प्रस्तुति एक तरह के सामाजिक संकोच के साथ साहित्य में आती है।

-डॉ अभिमन्यु कुमार

सहायक प्राध्यापक

एम.एल.एस. महाविद्यालय

सरिसब-पाही, मधुबनी